श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

विद्याविनोदनाटक ।

श्रीकृष्णानन्द द्विवेदी द्वारा

सङ्कलित ।

भारतमित्र अध्यक्ष द्वारा प्रकाशित ।

कलकत्ता,

श्रीकृष्णानन्द शर्मा द्वारा भारतमित्र यन्त्रालयमें

मुद्रित हुई ।

नं० ९६ नया चीनाबाजार ।

ई० १८८४ ।

श्री श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।

विद्याविनोदनाटक।

श्री कृष्णानन्द द्विवेदी द्वारा

संकलित।

भारतमित्र अध्यक्ष द्वारा प्रकाशित।

कलकत्ता,

श्रीकृष्णानन्द शर्म्मा द्वारा भारतमित्र यन्त्रालयमें

मुद्रित हुई।

नं० ९९ नया चीनाबाजार।

ई० १८८४।

नाट्योल्लिखित पात्र ।

पुरुष

चन्द्रसेन — नागरपुर का राजा ।

ढोंगलसेन

विनोदचन्द्र — शान्तिनगरीका राजपुत्र

सुरेशचन्द्र — शान्तिनगरीका मन्त्रीपुत्र

मन्त्री, मुसाहिब, पारिषद, पुरोहित, भाट, द्वारपाल ।

स्त्री

विद्या — नागरपुर की राजकन्या ।

तड़िता, कन्दला — राजकन्या की दोनों दासी
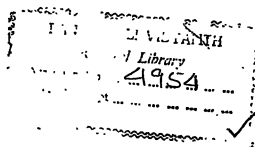
प्रस्तावना ।

(जवनिका उठती है ।)

नान्दी ।

ठुमरी ।

प्रभु पूरण ब्रह्म अखण्ड भजो
किस सोच विचारमें बैठे हो
तन जन धन सब सदा न रहते
किसके अभिमानमें ऐंठे हो १ प्रभु०
जिसने मगरे तोहि जन्म दिया
उसके कभी ध्यानमें पैठे हो २ प्रभु०
धर्म्ममें ध्यान दिया न कभी
अब पाप करनेमें जैठे हो ३ प्रभु०
हरिनाम भजो सब काम तजो
कलिकालकी जाल उमैठे हो ४ प्रभु०

और भी (एमन ठुमरी ।)

पायो मैं बहुत कलेश, खबर नहीं लीन्ही हमारी
स्वारथ खेप्यर कर, तृष्णा विभूति अंग फिरत हैं
देश विदेश, खबर० ।
आशा ग्रसित मन याचत है रंकन को,
जानत है परम नरेश, २ खबर० ।
सार असार विचार बिसारो, कपट योगीश्वर वेष
खबर नहीं लीन्हो हमारी पायो० ।
ग्राम, बाम धन धाम सवांरत, श्वेत भये सिरकेश,४।ख०।

(पारिपार्श्वके सहित सूत्रधारका प्रवेश।)

सूत्रधार। अहा! आजका यह समय भी क्याही अनमोल है कि ऐसे ऐसे प्रतिष्ठित महज्जन, धीर बीर, महानुभाव इस दर्शक समाज, कि शोभा बढ़ा रहे हैं ; विद्याका विनोद देखने की लालसासे ऊर्द्धमुख हुए रङ्गमञ्च निहार रहे हैं, मानो चकोरगण चन्द्रोदयका समय समीप जान सावधान हो बैठे हैं ?

पारि०। आपका भी तो यही धर्म्म है, इन सज्जनोंके शुभागमनको सफल करें।

विदूषक। शास्त्रमें भी तो लिखा है "मैफिल बरबाद जहां भांड़ न बाशद" हूं! आज नाचोगे तो नानी सुपने आवेगी।

सूत्र०। (पारिपार्श्वसे) अच्छा तो तुमही बताओ आज कौनसा नाटक किया जाय ?

पारि०। मुझमें इतनी बुद्धि कहांसे आई जो आप को बताऊं ;

बिदू०। ले मैं बताय दूं ; चुहीका सांग कर ले और तुझे न आता हो तो मुझसे सीख ले—ले कान इधर ला (चौबोला गाता और नाचता है।

देख मर्दमी मेरी ताऊं इकला ही चढ़ जाऊं
जो चूही वह सोवत होतो तुरत पकड़के लाऊं
चुहीने जुलम गुजारा मेरे एक थपपड़ मारा
सपड़ सपड़ गुड़ खाय मखा पड़ भाई कीसं।

सूत्र०। (नटीको देखके)

ठुमरी।

पियारी मेरी, तनिक इते चलि आव,
नलिनीदल सम नयन तिहारे जो, उपजावत जिय चाव।१।
भृकुटी कुटिल कामधनुहीं सीजी, निमिषबानकरे घाव।२

ललितलवङ्ग लता सम कोमल, तव तनु पूरित भाव। ३।
हरि हरको हिय हरत हेरि तनि,
कामिनी सरल स्वभाव। ४।

(नटीका प्रवेश।)

(नटीसे) प्यारी! तुमने इतना विलम्ब क्यों किया? नहीं देखती, आज ऐसे ऐसे महत्पुरुष, सुविज्ञजन तुम्हारी बाट ताकते हैं, तुम विलम्ब करके उनका चित्त दुखाती हो; जो अपनी कोमल शय्याको त्याग, इस अन्धियारी रात्रिमें निज प्यारीसे बिछुरनेका दुःख उठा, तुम्हारे नृत्य देखनेको यहां पधारे हैं? उनके चित्त चाहे कार्य्य करनेमें विलम्ब करना उनको कैसा दुखदायी होगा?

नटी। प्यारे नाट्यकलाकौशल! मैं आ पहुंची रुष्ट न हूजिये, यह कहिये, आपने आज इन महानुभावों को कौन सा नाटक दिखलाना विचारा है?

सूत्रधार। आज कोई ऐसा नाटक खेलना चाहिये जिसमें शृङ्गार, वीर, करुणा, हास्य प्रेम, वियोगादि सबही रस झलकते हों, क्योंकि इस समय सबका मन एक प्रकारका रसान्वेषी नहीं है, किसी को शृङ्गारही प्यारा है, कोई वीरही का आश्रयी है, किसीका करुणाही मन हरण है, कोई हास्यही से प्रमुदित रहता है, कोई वियोगही की पीनकमें झूमता है; इस कारण ऐसा नाटक खेलना जो इस समाजको आनन्द देवे और दर्शकोंसे आनन्द तरङ्ग की छटाको घटाके समान आकाश में सटा दे।

नटी। प्राणाधार! ऐसा कौनसा नाटक आपने विचारा है; जिसमें इतने रस भरे हों? मैं तो देखती हूं थोड़े दिनोंके खेले नाटकोंमें ऐसा कोई नहीं है!

सूत्रधार। प्यारि! क्या तुमको उस नये नाटकका नाम भूल गया जो इसी गत शुक्लपक्षमें सीखा गया था; जिसका नाम विद्याविनोद है; जिसमें विद्याको ऐसे ऐसे दुःखोंसे और विपतासे पाला पड़ा कि तुमने झूंझलाकर प्रण करना चाहा था कि मैं इस नाटकमें विद्या कभी नहीं बनूंगी। कहो वह नाटक इस समाजको मनमाना आनन्द देवे तो क्या बड़ी बात है? अथवा यह प्रस्फुटित कमल इन पराग लुब्ध मधुकरों को अपने अपूर्व्व रससे छकावार लहालोट कर दे तो क्या कुछ आश्चर्य्य है?

नटी। प्राणप्यारे चित्तमोहन! आश्चर्य्य है? उस नाटक के लिये यह कोई बड़ी बात तो नहीं है; निस्सन्देह वह नाटक इस दर्शक समाजको आज अनुपम आनन्द देगा, अपनी तोतली बोलीसे अवश्यही आज इस समाजको अपनावेगा अब हमलोगोंको शीघ्र अपने अपने काममें लगना चाहिये। (नेपथ्य की ओर देखकर) हरे! यह क्या!! देखिये!!! गोकुला और जिवना मन्त्री और मुसाहिब बन कर आना चाहते हैं; क्या हमलोगोंने बात करने में इतना समय बिता दिया?

(दोनों जाते हैं)

"जवनिका पतन।"

इति प्रस्तावना।

विद्याविनोदनाटक।

प्रथम अङ्क।

(जवनिका उठती है।)

स्थान-राजदर्बार।

(राजा मन्त्री और दो मुसाहिब यथा स्थानस्थित।)

राजा। (मन्त्री और मुसाहिबोंसे) अब आपही लोग कहिये, हमने कौनसा उपाय रख छोड़ा है ? अरे! ओझाई, देवाई, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, दुआ, तवीज़, औषधी, वैद्य, पाठ, पुराण, हरिवंश सब तो कर चुके, दो दो व्याह भी किये! अब तो हम कोई उद्योग नहीं देखते कि जो पुत्रके मुखारविन्दावलोकनका कारण हो, जहांतक जानता और देखता हूं मुझे पुत्र होनेकी इच्छा नितान्त ही निष्फल जान पड़ती है; अब मैं अवश्य ही नरकका अधिकारी हूं क्योंकि शास्त्र और वेद पुकार पुकार कहते हैं "जिसको पुत्र नहीं है उसका उद्धार नहीं होनेका।"

मन्त्री। महाराज! आपने यह गप्प किससे सुनी है ? यह भी कोई शास्त्र कहता है कि जिसके पुत्र नहीं वह नरकमें जायगा ? भला जो विरक्त और विरागी होकर संसारसे न्यारे हो जाते हैं उनका उद्धार क्या होताही नहीं ? भगवान् याज्ञवल्क्य का कौन पुत्र था ? गार्गी किस पुत्रके प्रतापसे तरी ?

यह सब भक्त क्या नरकके अधिकारी हुए ? इन बातोंको तनका महाराज अपने मनसे दूर करें ; यह बात सर्व्वांश झूठी है कि जिसको पुत्र नहीं उसका उद्धार नहीं । हां, यह है कि सन्तान बिना सम्पत्ति और विभव की शोभा नहीं होती वंश निर्वंश हो जाता है ।

दूसरा मुसाहिब । आप लोग यह कैसी कुतर्कना कर रहे हैं ? क्या राजा वृद्ध हो गये, जो ऐसी बातें करते हैं ? ऐसे अशुभशब्द उच्चारण करते हैं ? क्या दो विवाह हुआ इससे भूतल ऐसी स्त्रीसे शून्य हो गया जो पुत्र प्रसव करे ? क्या आपलोगोंने समझ लिया कि राजाजी को पुत्र होही नहीं सक्ता ? यदि आपलोग सम्मति करके आज्ञा दें तो मैं दस बार ऐसी रूपवती सुन्दरी स्त्री लाऊं कि रनवास जगमगा उठे, और फिर देखिये लड़का होता है या नहीं ?

मन्त्री । (पहिले मुसाहिब की ओर सैनकरके) साहब ! जब आप ऐसा उद्योग जानते हैं और कर सक्ते हैं तो इसमें विलम्ब करनेका कौनसा अवसर है ? हम तो कर कराके थक गये ।

पहिले मुसाहिब । (दूसरे मुसाहिबसे) निस्सन्देह आपको विलम्ब करना अनुचित है ; वह उपाय अभी कीजिये जिसके लिये इतनी स्लाघा हांक गये, क्या हुआ महाराजका जैसे दो विवाह हुआ वैसे एक और सही, वह काम करना चाहिये जिस्से राजाजी को पुत्र लाभ हो और सब ग्लानि तथा कुतर्कनाएं जो महाराजके मनमें उठ रही हैं मिट जायं ।

दू० मु० । आपलोग राजाजी से कहकर नौरंग भाट को बुलवावें, वह मेरी चाही हुई बातोंको पूरी करेगा, वह बड़ा चतुर और देशकालके हेरफेर तथा चालढालसे जानकार है ।

मन्त्री । (राजासे) महाराज ! नौरंग भाटको बुला भेजें वह मेरी चेष्टा पूरी हो मुसाहिब जी आपका और एक व्याह करानेके लिये एक स्थान पर भेजेंगे । आशा है कि इस बार अवश्यही पुत्र लाभ होगा ।

राजा । (सब लोगोंसे) अच्छा आपलोगोंको यदि यही इच्छा हैं तो कीजिये, एक बार और सही ; हमको तो कुछ भी आशा नहीं है क्योंकि दो दो विवाह भी कर चुके, यदि आपलोग चाहते हैं और आशा बंधाते हैं तो यह तीसरा भी स्वीकृत है । (नेपथ्यकी ओर देखकर) अरे है कोई ! नौरङ्ग भाटको इधर तो भेजो ?

(नौरंग भाटका प्रवेश ।)

नौ० । (हाथ जोड़कर) महाराज की सदा विजय हो, कहिये क्या आज्ञा है ?

रा० । मन्त्रीजी जो कहते हैं उसे करो ।

नौ० । जो आज्ञा, (मन्त्री की ओर मुंह फेरकर) मन्त्री जी !

मन्त्री । (दूसरे मुसाहिबसे) इस्से जो कुछ आप चाहें कह दें उसको करनेको खड़ा है ।

दू० मु० । (नौरंगसे) तुम जाओ, नागपुरके राजा चन्द्रसेनकी कन्या बड़ी सुन्दरी और गुणवती है ; जिसके रूप, गुण, विद्या की प्रशंसा तुम सुन चुके हो. ऐसा काम करो कि वह हमारे महाराजसे व्याही जावे ; तुम इन बातोंमें आपही चतुर हो विशेष कहनेका कुछ प्रयोजन नहीं है, ऐसा तार बांधना कि बहुत शीघ्र राजाजीका व्याह उस्से हो जावे और राजाजी को पुत्रलाभ हो जिस्से प्रजा घर घर बधाई बजावे ।

नौ० । प्रभो ! उसका प्रण तो यह है कि जो हमारे ऐसा विद्वान, नीति विज्ञानमें निपुण, तीन शास्त्रका वक्ता और २०

वर्षकी बयवाला होगा उससे व्याह करूंगी मैं अकेला इन गुणों से कोरा वहां जाकर क्या करूंगा ?

दू० मु० । (प० मु०से) क्यों भई ! यह तो एक निराला ढङ्ग निकालता है, भला आपको स्मरण हैं या नहीं ? उस दिन वह सन्तनामी पुरोहित उस कन्या की टिप्पणी लिये फिरता था और जन्मकुण्डलीके अनुसार व्याह करनेको वर ढूंढ़ता था, हमारे महाराजके वृद्ध पण्डितने उसके नामसे महाराज की गणना करके कहा कि टिप्पणी समुचित मिलती है और हमने इस भयसे कि कदाचित् राजाजीको यह स्वीकृत न हो राजगृहमें आने से निषेध कर दिया था ।

प० मु० । हां वह सब तो मुझे स्मरण हैं, परन्तु वह सब कार्य्य राजाकी कन्याके मतसे विरुद्धथे, वह केवल राजा चन्द्रसेन की सम्मति थी ; किन्तु वह कन्या उस ब्राह्मण वा अपने पिताके इन मतोंसे किञ्चित् सहमत नहीं है । वही ब्राह्मण कहता था कि उस कन्याका मत और ही है, टिप्पणी उप्पणी को तो वह कुछ नहीं मानती वह यही कहती है जो नौरंग कह रहा है ।

दू० मु० । क्या ऐसा भी हो सक्ता है ? कि पिता अपनी कन्या जिसे योग्यवर समझ कर व्याह दे, वह कन्या अस्वीकृत करे ? क्या उसको शास्त्र और अपनी मर्य्यादाका भय नहीं है ? क्या पिता की अवज्ञा को वह कन्या जो यथार्थमें विद्या पढ़ी है, नीति जानती है, दोष नहीं समझती ? यदि ऐसा करती है तो अवश्यही वह मूर्खा है, धर्म्म नहीं रखती ; शास्त्र नहीं जानती विद्या नहीं मानती ।

प० मु० । आप कौन वेद वा शास्त्र पढ़े हैं ? किस शास्त्र वा नीतिके सूत्रसे चाहते हैं कि वह आपके राजासे व्याह करने में सनद्ध हो जावे ।

दू० मु०। मैं कोई शास्त्र वा वेद नहीं जानता, परन्तु बूढ़ों से सुनता हूं और सर्व्वदा से देखता भी आता हूं कि सारा संसार वर चाहे मूर्ख वा बूढ़ा हो टिप्पणी मिला कर, गोत्र जांचकर, घर द्वार देख कर अपनी अपनी कन्या देता है और आज़तक हमने ऐसी कन्या देखी, न सुनी, कि पिता जिस वर को कन्यादान दे उसे अस्वीकार करे।

प० मु०। हां! आपने यह नहीं सुना हो तो कुछ आश्चर्य नहीं, परन्तु पहले यह विचारिये कि न आपने कोई शास्त्र वा वेद पढ़ा और न मैंने हो कुछ नीतिकी पुस्तकें देखी, रहा यह कि जैसे आपने सुना वैसे हमने भी वैसेहो औरोंने सुना, परन्तु उसने स्वयं पढ़ा और धर्म्मशास्त्रके वाक्यों को देखा, जब कहीं ऐसा लिखा होगा तभी तो अपने मत पर दृढ़ है; जब ऐसे पिता को ऐसी आज्ञा न माननेसे शास्त्र कोई दोष नहीं कहता होगा तभी तो वह नहीं मानती? अतः वह धर्म्मशास्त्र भी जानती है, नीति भी देखती है, धर्म्म भी रखती है, विद्या भी पढ़ती है, विदुषी भी है, हमलोग जो उसे मूर्ख कहें स्वयं मूर्ख हैं; हमलोगों की तर्कना और विचार मूर्खोंकासा है कि ऐसी शुभगुणसम्पन्ना नायिका को ऐसे लीकपीटन दाससे व्याहनेका उद्योग करते हैं वह मूर्खा कदापि नहीं?

दू० मु०। (आश्चर्य होकर निषेध करता हुआ) हरे! यह बके जाते हो? राजदर्बार में बैठे हो इसका कुछ भी ध्यान नहीं है सामने महाराज बैठे हैं क्या कहते होंगे।

प० मु०। अजी बैंगनदास! कहेंगे क्या आपके महाराज, और आप डरिये और सिकुड़िये आप जो लटते हैं, जब चाहेंगे हाथ फैलाकर तोड़ लेंगे, हमको क्या औरोंकी तरह ठकुर सुहाती भाड़नी है कि हींहीं, दो दो से बबुआको रिझाये रहें

नहीं तो जहां टेढ़े हुए कि हमारी दो हाथकी लम्बी पूंछ झपट डालेंगे, हमको तो यही समझो कि सांची बात सदा ही कहें, सबके मनसे उतरे रहें।

दू० सु०। भई तुम बड़े दिल्लगीवाज हो, कहां यह शोच की बात कहां तुमको दिल्लगी सूझती है, तो फिर क्या करें ?

प० सु०। फिर आपके कहने बिना क्या हमारा काम रुकता है ? कि धमकी देते हैं, "क्या करें" अरे ! कहना क्या है ? कहिये या मत कहिये मैं सच्ची बातोंके कहने में क्यों हिचकने लगा ?

दू० सु०। सच्चीं कहा कीजिये ? परन्तु यह बतलाइये यह भाट भेजा जाय तो वहां किसतरहसे कार्य्य साधन करेगा ?

प० सु०। (नौरंगसे) भई ! सुनो, लोग कहते हैं तो जा, लेकिन विद्याके महलमें इसका कुछ सन्देसा मत भेजना क्योंकि उसके सुननेसे बड़ा अनर्थ होगा ; राजा चन्द्रसेनके द्वार पर जाना और उन्हींसे कार्य्यसाधन की चेष्टा करना, तुम जो कहते हो यथार्थमें विद्याका यही पण है परन्तु हां यदि राजा का वश चला तो नहीं कह सकते।

दू० सु०। जाने दीजिये ; मैं आशा करता हूं अवश्य किसी न किसीतरहसे राजा व्याह करेहीगा और उस कन्या को जिस तरह सम्भव होगा अपने मत पर लावेगा।

प० सु०। अच्छा जो नौरंग ! जा, पर मेरी बातोंका ध्यान रखना कि विद्या को इसकी कुछ भी हवा न पहुंचे नचेत् परिणाम अच्छा नहीं होगा।

राजा। (मन्त्री और मुसाहिबोंसे) क्या यह अकेला जावेगा ? इसको दो आदमी और चाहिये अर्थात् एक ब्राह्मण दूसरा और कोई एक।

मन्त्री । नहीं महाराज ! तीन मनुष्य यात्रामें अशुभ हैं ; या चार नहीं, तो दो चाहिये ।

प० मु० । अच्छी बात है ; बहुत झमेला अच्छा नहीं ? बूढ़े पण्डितको ले लेना जो ; नोरङ्ग ! बस, तुम दोनों आदमी बातचीत करते चले जावोगे ?

दू० मु० । अब विलम्ब नहीं करना चाहिये ?

मन्त्री । हां हां चले जाव बूढ़ पण्डित को ले लेना कहना कि राजाजीकी आज्ञा है नागरपुर चलने को चलिये ; (राजासे) महाराज ! आज्ञा दे दें कि बूढ़े पण्डितको लेकर जावे ।

राजा । जाव हमारी आज्ञा है, बूढ़े को ले लेना अब विलम्ब मत करो, शीघ्र चले जावो ।

नौरंग । महाराज ! जी आज्ञा । (जाता है ।)

(नेपथ्यमेंसे ठाकुरजीके मन्दिरसे घण्टे की ध्वनि ।)

मन्त्री । (चौंककर) महाराज ! सन्ध्याका समय हो गया सूर्य्य भी अपनी अंशुमाली किरणों को एकत्रित कर अस्ताचलको पाहुने हुए अब दर्वार विसर्जनका समय है ।

राजा । अच्छा अब आपलोग अपने अपने स्थानको जावे, मैं भी अब निज नैमित्तिक नियमानुसार सन्ध्याको जाता हूं ।

(एक ओरसे राजा और दूसरी ओर से मन्त्री दोनों मुसाहिबोंसे हाथ मिलाये हुए दर्वारसे चले गये ।)

(सबका प्रस्थान ।)

जवनिका पतन ।

इति प्रथम अङ्क ।

द्वितीय अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(जवनिका उठती है।)

स्थान नागपुरस्थ विद्यामन्दिर।

(भगवतीके सामने हाथजोड़के विद्या स्तुति करती है।)

ठुमरी।

मुकुट विचित्र चित्र देखि मन मोह्यो आज,
उरमें बसी है यह मूरति सुहावनी। टेक०।
देखि कटि भाग गये केहरी लजाय बन,
किङ्किणी किणीणि किणि किङ्किणी बजावनी। १।
योगिनी जमात कर खप्पर बजावे मात,
भैरों की जमात गावें भूतन नचावनी। २।
शीशकेश खुल्ल कर आये हैं चरण लगि,
देखिकें गईं पाताल भागि सारि नागनी। ३।
देखिके अनूपरूप शरण गहत भूप,
तीन लोक मांहि नाहि कोई ऐसी दाननी। ४।

(विद्या अपनी तड़िता और कन्दला सखियोंके साथ देवी को पूजा कर रही है, विनोद और सुरेश द्वारपर खड़े हैं।)

कन्दला। (तड़िताजे) सखि! हमारी राजकुमारी व्याहने योग्य हुई ; और देवीजो को इतने दिनों तक निश्चल चित्तसे पूजा अब उचित है कि देवीजी हमारी प्यारी कुमारी को अद्भुत सुन्दर, गुणवान् योग्य वर दें ?

तड़िता। बहिन! यह उत्कण्ठा तो हमारी तुम्हारी क्या, वरञ्च सब रनवासकी हो रही है और सब प्रजा मुक्तकण्ठसे यही कहती है कि राजकुमारी विवाहोपयुक्ता हुई, यही नहीं वरञ्च नदी, नाले, बाग, मन्दिर, पहाड़ सबके मुखसे यही बात निकलता है कि राजा की कुमारी विद्याधरी व्याहने योग्य हुई ईश्वर इसको ऐसाही गुणी और सुशील पात्र, योग्यवर दे, जैसी विद्या स्वयं नीति स्वधर्मनिष्ठता में निपुणा है; देखें ईश्वर यह सब मनोगत अभीष्ट कबतक सिद्ध करता है?

कन्दला। सखि! मेरा मन हामी भरता है कि अब राजकुमारी को शीघ्र वर मिलेगा? मैंने आज रात्रिको एक स्वप्न भी देखा है कि जिसका अनोखापन और असम्भव होना ही हमको कहने में सङ्कोच सम्पादन करता है।

त०। नहीं सखि! सङ्कोच नहीं करना; इसमें क्या है जो तुमने स्वप्न देखा है कह सुनाओ? अब कहनेमें विलम्ब मत करो, मेरा मन सुनने को हड़बड़ा रहा है, सङ्कोच वङ्कोच मत करो।

क०। मैंने गत रात्रिको स्वप्नमें देखा है कि हमारी सखी हम और तुम दोनोंको लेकर इसी स्थानपर देवी की पूजाके लिये आयी हैं और पूजा करतेही समय एक कोई राजकुमार सुन्दर सुरूप युवा द्वारपर आ खड़ा हुआ है; और वही राजकुमारी को ... ... (इतने में तड़िता अपनी दृष्टि द्वारकी ओर करती है और दोनों युवकोंको देखती; और लज्जित होकर मुंह फेर लेती है।)

त०। (लज्जित होकर धीमे स्वरसे) हे सखि! तुमने स्वप्न क्या देखा? सत्यही दो सुन्दर किशोर कुमार द्वारपर खड़े हैं?

क०। कहां है?

त०। (कन्द्लाके गले में हाथ डालकर समीप खींचती है और द्वार की ओर अंगुली दिखाकर) देखो सखि! वे दोनों कौन खड़े हैं?

दो० स०। हे प्यारि चन्द्रलाड़िलि! देखो, मन्दिरके द्वार पर कोई दो अनजान सुन्दर रूपवान कुमार खड़े हैं? यह क्या हुआ, नहीं जान पड़ता कि कौन हैं? इस मन्दिरमें विना डर किसलिये आ गये, कुछ भी जाना नहीं जाता?

विद्या। (अपने पूजनही में देखो की ओर मुंह किये हुए) चुप रहो, क्या व्यर्थ कलोल करती हो; जान पड़ता है, आज कल तुम दोनोंकी मति ठिकाने नहीं है; उन्मत्तसी व्यर्थ बातें गढ़ा करती हो?

दो स०। प्यारि! टुकद्वारकी ओर भी तो देख लो, पीछे हमको उन्मत्त बनाना; यह अवसर ऐसा नहीं है कि हमलोग बातें गढ़ती और तुमको देवीजीके ध्यान करते विघ्न करती, और आपकी ऐसी लालपोली सहतीं हमलोग सत्य कहती हैं तनिक देखलो तो कहना:—

विद्या। (द्वारको ओर देखकर और लज्जासे मुख छिपाकर) सखि! मन्दिरका एक कपाट भिड़का दो तो अच्छा है, यह बड़ा अनर्थ हुआ (स्वगत) हरे मन्! तू क्यों उस दक्षिण ओरके खड़े कुमारको देखकर हाथसे बाहर हुआ जाता है? क्या हमारी सारी प्रतिष्ठा खोना चाहता है? हरे प्रभो! यह क्या मेरे चित्त और ज्ञानकी स्थिरता और गम्भीरता तूने कहां निकाल फेंकी? कि मन इसतरह सरपट भागा जाता है, लज्जाने भी सङ्ग छोड़ दिया; नहीं जान पड़ता इस समय यहां क्या होनेवाला हैं? मेरा मन ऐसा हुआ जाता है, मानो भांगका सताया हुआ हो (प्रगट, सखियों की ओर देखकर)

हे वहिन! मेरा मन न जाने क्यों शिथिल हुआ जाता है, सुध बुधि विस्मृति हो रही हैं। (इस प्रकार कहकर ऐसी बैठती है मानो अचेत होकर गिर जायगी।)

त०। (एक कपाट बन्द करके बन्दलावे) सखि! यह देखो राजकुमारी की क्या दशा हो रही है? किस धारमें डूबी जाती है? बड़ा अनर्थ हुआ चाहता है? क्या किसीने जादू तो नहीं किया?

(विद्या गिरना चाहती है दोनों सखियां दोनों ओरसे पकड़ लेती हैं और उसे बैठाकर आप भी अगल बगल बैठ जाती हैं।)

सुरेश। (मन्दिरगत ध्वनि फेंकता हुआ) अरे यह कौन है? देवीजीका कपाट क्यों बन्द करती हैं? (चारों ओर देखता हुआ) क्या इनको छोड़कर दूसरा कोई देवीजीका दर्शन नहीं करने पावेगा? हे दर्शन-करनेवालियों! कपाट खोल दो, हम लोग भी देवीजीका दर्शन करें; क्यों कपाट बन्द करती और हमलोगोंका चित्त जो इतनी दूरसे इनका प्रचण्ड एवम् साक्षात् प्रताप सुनकर दर्शन और मनोर्थसिद्ध करनेको असह्य दुःख उठा कर पहुंचे हैं, दुखाती हो? क्यों इस पुण्यकार्य्यमें कण्टक बनती हो; क्यों प्रेमास्पदके सच्चिक्कन सुढार मार्गमें कण्टक बनती हो?

(कपाट खुलता है विद्या लज्जित एक कोनेमें और दोनों सखियां अगल बगल खड़ी हैं।)

तड़िता। हे पथिको। आपलोग दर्शन करें, हम दर्शन करनेमें किञ्चित् विघ्न नहीं कर सकतीं; किसी प्रकारकी शङ्का न करें, परन्तु कृपा कर द्वारपरसे तनिक हट जायं, हमारी राजकुमारी और हमलोग बाहर चली जावें; पुनः आपलोग निश्चिन्त होकर दर्शन करें, आपके दर्शनका कोई बाधक और नहीं है?

सु० । (द्वारपरसे विनोदके साथ हटता हुआ) आप लोग चली जावें हम हट गये, परन्तु आप सौभाग्यवतियोंसे मेरी एक प्रार्थना है जो दर्शनके पश्चात् करूंगा ; यदि कोई बाधा वा कुछ क्लेश न हो तो आप इसी सरोवर पर अपनी राजकुमारीको विदा करके आज पुन: दर्शन दें तो हम अधिक कृतज्ञ होंगे और आपका आजन्म गुण मानेंगे ।

त० । (सखियोंसे) प्यारि ! हमलोग चलें, अब तो पूजा आदि सर्व्वकार्य्य हो चुके और ये पथिक भी दर्शनके लिये बहुत अन्तरसे थके आये द्वारपर खड़े हैं अतएव यहांसे अब शीघ्र घर चलना अच्छा है ।

(विद्या सखियोंके साथ प्रस्थान करती है, दोनों युवक भी दर्शन करके अपने डेरे को जाते हैं ।)

पटाक्षेप ।

इति प्रथम गर्भाङ्क ।

द्वितीय गर्भाङ्क ।

जवनिका उठती है ।

(स्थान तालाव की पीड़पर राजकुमारका खुला डेरा विनोद और सुरेश परस्पर बातें करते हैं ।)

सुरेश । सुयोग्य वीरवंशज ! आपका चन्द्रानन आज क्यों कुम्हला रहा है ? आज आपका प्रदीप्त मुखारविन्द क्यों ऐसा निष्क्रान्ति दृष्टि आता है ? आप सौन्दर्य्य गण्डस्थल आज जिस शोकको ज्वालासे शुष्क हो रहा है ? आज शुभोज्ज्वल मुख क्यों इस प्रकार चिन्तित हृदयका द्योतक हो रहा है ?

विनोद। हमारे परम सेव्यमान! सनातन कुलपूज्य! मैं आपसे कुछ दुराव नहीं कर सक्ता, आपही हमारे सब कार्मोंके आधार हैं और जहांतक सम्भव है हमारे हितचिन्तनमें निरालस्य चित्तसे तत्पर रहते हैं; आप समयके फेरफार, राजनीतिकी रीति, भांतिसे समुचित अभिज्ञ हैं और सर्व्व कलाओंमें दक्ष हैं आपसे सब बातोंका कहना और आपही की सम्मतिपूर्व्वक कार्य्य करना हमारी ही नहीं वरञ्च हमारे कुटुम्ब मात्रका कर्त्तव्य है; सुनिये, आज प्रातःकाल जिस राजकुमारी सुरूपाको देखा है और जिसने देवीपूजनका ध्यान छोड़कर अपने निर्म्मल और प्राणवर्द्धक, अमियमय, मतवारे, रतनारे नैनोंसे देखा है जिसकी काली पुतलियां और खञ्जन सरीखे आंखोंकी सुन्दरता, एवं धनुषाकार भौंरें मेरे हियेको वेध गये हैं, जिसके सुन्दर उठे हुए उरोजों और विम्बोष्ठोंका प्रतिबिम्ब हमारे नेत्रोंके सम्मुख नाच रहा है; जिसके उलटे कदली स्तम्भवत् युगल जङ्घोंकी सुघराई और मत्तमातङ्गवत् चालने आज हमारे मनको मोहित किया था, उसीके मिलने को हमारा मन इस समय चञ्चल हो रहा है; आज उसी की मधुरवाणी सुननेकी आशयमें मेरा उत्कण्ठित कर्ण अन्यान्य ध्वनियोंके लिये वधिर हो रहा है, इस समय उसी सुकुमारीके चन्द्रवदन अवलोकनको हमारा मन पूर्णिमाके पूर्णचन्द्र सदृश अम्बुधरसे सताये हुए चकोर की भांति वावला हो रहा हैं।

सुरेश। राजकुमार! आप इतना अधीर क्यों होते हैं? जिसके कुल और जातिका कुछ ज्ञान नहीं है, जिसके आचरणसे कुछ भी परिचय नहीं, जिसके व्यवहार और वृत्तियोंसे कुछ भी अभिज्ञ नहीं है, उसके लिये इतना आतुर हो जाना नीतिके सूत्रोंको तोड़ना है? आप ऐसे वीरवंशजको कदापि

उचित नहीं है कि इस प्रकार सर्व्वसाधारण ग्रामीण युवतियों पर आसक्त होकर अपनी सुधि बिसरा दें, और अपने चित्तको इतना अधीरक दें कि जिसका आभास चन्द्रानन पर भी राहु बनकर ग्रहण लगावे।

विनोद। न्यायविशारद! यह सत्य है; मेरी प्रतिष्ठा, मेरा गौरव, मेरा धर्म्म, इस समयके इस कार्य्य और चेष्टाके लिये नितान्तही निषेध करता है; हमारे ऐसे अभीष्ट वा ऐसी अभिलाषाके लिये सारी अवस्थाओंमें हमको दुतकारता और लताड़ बनाता हैं, तिस पर भी यह हमारा लोलुप मन अपने मान गौरव और धर्म्मके लिये साथ रहनेमें उस चन्द्रवदनीके दर्शनका सहारा लेकर हमको हत सामर्थ्य और निर्व्वल बना रहा है, और भक्तिपूर्व्वक उस चन्द्रमण्डलके अभ्रूपमान करने को हमारे चकोरवत नेत्रोंको उभाड़ता है और यही कारण है कि मैं उस त्रिभुवन विजयिनी की जिह्वासे उच्चारित शब्दों को सुननेके लिये महा उत्साही होकर और बातोंके सुननेसे बहरा हो रहा हूं जिस्से आप की चाणक्यसे भी बढ़कर शिक्षा और उचित उपदेश हमारे पत्थर सरीखे मन पर अपने अधिकारका अङ्कुर जमानेमें सर्व्वथा असाहसी और पराजित से दीखते हैं।

सुरेश। वीरवंशज! आप की यह दशा और लच्छेदार बातोंके जाखने तो मुझे ऐसा बांध लिया कि मेरे सहायक सुर-गुरु वृहस्पति भी उस्से मुक्त करने में असमर्थ हैं; आपका यह कहना बहुतही सत्य है कि "मेरा मन उस चन्द्रवदनी सुकुमारीके देखने में लीन होकर अन्य बातोंके सुननेसे उपेक्षा करता है। (नेपथ्यमें से नूपुरादि की झनकार सुनकर और चौंककर स्वगत) जान पड़ता है कि कोई स्त्री आती है? क्या

वे दोनों सखियां तो नहीं है ? जो मन्दिरमें उस कुमारीके साथ आई थीं, और जिन्हें हमने प्रतिष्ठित और सभ्य ललनाओं में जानकर यहांके सब वृत्तान्तोंसे अभिज्ञ होनेके लिये बुलाया गया था ?

(नेपथ्यमें से झनझनाहट की ध्वनि आती है, और दोनों सावधान हो जाते हैं।)

(कान्दला तड़ितासे यह कहती हुई दोनों प्रवेश करती हैं कि "सखि ! नहीं जान पड़ता उसको आज क्या हो गया है ? हमने इतना पूंछा पर तौभी उसने अपना भेद नहीं खोला" और आगे उन्हीं पूर्व्व लक्षित युवकोंको देखकर चौकती और सावधान हो जाती हैं; और चारों की आंखें चार होती हैं।)

त०। हे प्रिय पथिको ! आप की आज्ञानुसार हमलोग आ पहुंची क्या आज्ञा है ?

सुरेश। हमने आप को केवल नाम धाम जानने राजपारवारिक रीति भांति, आचार. व्यवहार तथा यहां की शुभाशुभ प्रथाओंके जांचनेके लिये आग्रह किया था, क्योंकि हमलोग एक बड़ा मार्ग काटकर और बड़े परिश्रमसे काल गवांय कर देवी दर्शन को आये हैं ; अत: उपरोक्त बातोंका जानना हम को अवश्य है, यदि कुछ हानि न हो और अपनी राजकुमारी का अथवा अपना समाचारादि हमको बिदित करना कुछ अनिष्ट न जान पड़े तो बतलाइये ?

त०। प्यारे पथिको ! यदि आपलोगों को यह आवश्यक है तो हमको बतलाने में कुछ भी रोक वा अनिष्ट नहीं है ; सुनिये, वह राजकुमारी इस नागरपुरके राजा चन्द्रसेन को अविवाहिता पुत्री विद्याधरी थी, नित्य प्रति निश्चल मनसे देवी

की आराधना करती है और उसी नैमित्तिक रीत्यनुसार आज प्रातः देवीमन्दिर में आई थी और यह उसी राजाके मालिनकी पुत्री है, यह मेरी बचपनसे ही सहगामिनी और प्यारी है; मैं राजा की ताम्बूलवाहिनी की पुत्री हूं. इसका नाम चन्दना मेरा तड़िता है; यद्यपि हम दोनों सखियां राजकुमारी की अनुचरी की पुत्री हैं परन्तु एक अवस्था और बालापनसे नित्य अठखेलपन एवं सहवाससे चन्द्रनाड़िनीका स्नेह सहोदर भगिनीसा है और यही कारण है कि हमलोग उसकी आंखों से ओट नहीं होतीं और न वह होने देती है: इस समय किसी प्रगाढ़ चिन्ता और भारी विचारमें बेसुध पड़ी हैं, हम लोगोंके आनेका आहट भी उसे नहीं मिला, नचेत हम दोनों का यहांतक उसके बिना आना नितान्त असम्भव था; हम लोगोंका चित्त यहां खड़ा रहने पर भी उसका समाचार जाननेकी बल्लियों उछलता है और उसकी आगन्तुक दशा हमारे मनको विकल कर रही है?

सुरेश। हे सुकुमारियो! यदि आप लोगोंको ऐसा दुःख होता है तो हमारा यहां रोक रखना अनुचित होगा? क्या जाने उसकी दशा कैसी हो रही होगी नहीं तो उस दुःखके हम कारण कहे जायंगे।

त०। प्रिय पथिको! यह सब सत्य है, परन्तु आप लोगों का नाम धामादि जाने बिना हमलोग नहीं जा सकती क्योंकि उसके सचेत हो जाने पर यह सब वृत्तान्त और शुभसम्वाद उस के क्रोध शान्ति करनेमें काम आवेंगे?

सु०। प्रिय पथिक सत्कारिणी! ये जगद्विख्यात शान्तिपुर नगरीके राजा कान्तिगोपालके पुत्र विनोदचन्द्र हैं, मैं इनके सत्कोकुलका हूं नाम मेरा सुरेशचन्द्र है? इन्हीं की इच्छानुसार

देवी की आराधना और देशाटनके लिये आया हूं ; मैं भी यद्यपि इनके पितृमन्त्रीका पुत्र हूं तथापि लड़कपनसे सहवास और परस्परामोदके कारण इनका प्रीतिपात्र हूं, ये हमारे ऊपर सहोदर भ्राताका सा स्नेह रखते हैं, प्रत्येक प्रकारका सुख दुःखोंका साथी बना हूं यद्यपि कई एक ब्राह्मण टिप्पणी लेकर आये पर हमारी इच्छानुसारही व्याह करनेका प्रण इन्होंने किया है ; देशाटनमें हमारी प्रेरणासे इस समय इनकी चेष्टा हैं परन्तु नहीं जान पड़ता किस कारणसे इनका मन आज उदास हैं ?

त०। हे मन्त्रीपुत्र! सत्य है राजकुमारी को भी आज इसी दशाने घेरा. राजाने कई बार टिप्पणी दिखा कर व्याह कराना चाहा परन्तु हमारी कुमारी इस मतसे नाहीं करती है ? राजा पुराने पुराने लोकपोटनों की भांति चाहते हैं कि वर कैसाही अनमिल क्यों न हो, टिप्पणी तौल कर व्याह दें ; और यह सर्व्वदा कहती जाती है कि मैं स्वतन्त्र होकर व्याह करूंगी ? इस भयानक वाद और उलटे मतका परिणाम क्या होगा. यह शङ्का सारे नगरनिवासियोंके चित्तमें भड़क रही हैं. आज प्यारी की जो दशा है ईश्वर कुशल करें, इसके स्मरणमें मेरा मन यहांके ठहरनेसे सरपट भागता है ?

सुरेश। आपलोग जावें, परन्तु विनती हमारी यही है कि एकबार और मिलें ; क्या जाने हमारे राजकुमारकी कैसी दशा हो जाय ?

त०। यह तो कभी सम्भव नहीं है कि हमलोगोंको राजकुमारी को अकेला छोड़कर आपसे समक्ष्का अवसर मिले ? परन्तु हां यदि कोई हमारा आदमी आवे उसके साथ आ जावें

तो विशेष कृपा होगी, कुछ आनेसे हानि वा अनिष्ट नहीं है ?

सु०। निस्सन्देह आ सकता हूं।

दो० स०। जहां तक सम्भव होगा आप की इच्छा पूर्ण की जायगी।

(दोनों जाती हैं)

जवनिका पतन।

(सुरेश और विनोद भी डेरेमें प्रस्थान कर जाते हैं।

इति द्वितीय अङ्क।

तृतीय अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

जवनिका उठती है।

स्थान—विद्याका शयनागार।

(विद्या सेजपर बैठी हैं सामने दोनों सखियां खड़ी हैं।)

विद्या। सखियो! तुमने हमको आज बहुत दुःख दिया, एक घड़ीसे मैं अकेली बैठी हूं नहीं जानती कि तुमलोग कब और कहां चली गयी थी? हमको अकेले आज ऐसा दुःख हुआ जैसा आजन्म नहीं हुआ था?

त०। प्यारि! यह हमलोगोंका अपराध क्षमाके योग्य है क्योंकि आज जिन राजकुमारोंको मन्दिरके द्वार पर देखा था, और जिन्होंने चलते समय हमलोगोंको बुलाया, उन्हींके लिये आज उसी तालाब पर गयी थीं; वे पथिक बहुत दूरसे आये हैं देवोका दर्शन, तुम्हारे पिता की नीति, रीति यहां का आचार, व्यवहार जानना उनका अभीष्ट है, यही कारण है

कि हमलोग कुछ समयतक ठहर गई तौभी पूरा समाचार नहीं बता सकी थीं कि मारे घबराहट के दौड़ी चलीआती हैं।

विद्या। (कुमारोंका नाम सुनतेही शान्तिपूर्व्वक आप ही आप) तब तो ये दोनों मदनप्रभा बीरेन्द्रका सब समाचार जान चुकी होंगी, इनसे प्रीतिपूर्व्वक ऐसे भावसे पूछना चाहिये जैसे कोई पथिक साधारण बटोहीका समाचार पूछ लेता है; (प्रगट) प्यारि। तुम्हें भी तो उनका नाम धामादि सत्कारकी भांति जानना चाहता था, क्योंकि यह नीति है कि कोई बटोही हमारा नामादि पूछे तो हम भी उसका पूछ लें, यह उसके सत्कार और सन्तुष्टताका कारण कहा जाता है?

त०। हां सखि! यह तो नीति हुई है, सब को उचित है और हमने भी पूछा है।

विद्या। क्या वे लोग कोई ऐसे दूर देशनिवासी हैं जो हमारे पिताका नामतक नहीं जानते?

त०। सखि! वे लोग तुम्हारे नागरपुरसे बहुत दूर शान्तिनगरोके रहनेवाले हैं; उनमें से एक तो बड़ी सुन्दरता और तरुणाईसे सम्पन्न थे, जिन्हें तुमने भी मन्दिरके द्वारपर देखा था वही शान्तिनगरोके राजपुत्र हैं नाम उनका विनोदचन्द्र है; दूसरे उसी राज्यके मन्त्रीपुत्र सुरेन्द्र है; जैसी तुम्हारी अतुलित प्रीति हम सखियों पर है वैसेही वे भी राजकुमारको प्राणप्रिय है; राजकुमार व्याह भी मन्त्रीपुत्र सुरेशहीके हाथमें रख छोड़े हैं, वे जिससे चाहेंगी व्याह कर देंगे; सुरेशचन्द्र की इच्छानुकूल पात्री नहीं मिलनेसे ही विनोदचन्द्र अनव्याहे हैं; क्या करें बिना सब व्यवस्था कहे हमलोगोंको अपना उचित नहीं था, परन्तु तुम्हारे डरसे भागो चली आयी, चलती वेर सुरेशचन्द्रने विनयपूर्व्वक कहा कि एक बार और मिलना।

का० । प्यारि ! वह राजकुमार तुम्हारे योग्यवर है ; परन्तु क्या करूं इतने समय तक वहां खड़ी थीं उसने जीभतक न हिलायी; फिर उनके जिह्वा डुलाने में कुछ है भी नहीं, सब कुछ अधिकार तो मन्त्रीकुमारके आधीन है परन्तु उनसे भी इस विषयमें कुछ बात नहीं हुई क्योंकि सुरेशचन्द्र की भांति हम लोगोंमें से कोई तुम्हारा अधिकारी थोड़े हो था ?

वि० । (अनसुनी करके बहलाती हुई आप हीं आप) हे मन ! आज क्यों तेरी ऐसा दशा हो रही है ? आज क्यों इतना स्वतन्त्र होकर उछल रहा है ? नहीं जान पड़ता आज तुझे क्या मिलनेवाला हैं ? आज तेरा भाव इतना ऊंचा क्यों हो रहा है ? आज तू न जाने किस अभीष्टका साहस लेकर हमारे ज्ञान में हड़बड़ी फैला रहा है ? हं ! आज क्या शुभ होनेवाला है कि बायीं आंख फड़कने लगी क्या किसी प्राणप्यारे मित्रका दर्शन तो नहीं होगा ? इतना कह करके रोगीको भांति मुंह बनाकर लेट जाती है ।

त० । प्यारि कान्दला ! आज राजकुमारी क्यों खिन्नमुख सी रही है ? मुझे तो एक बड़ी भारी शङ्का होती है, जब तुम ने यह कहा कि "सखि वह राजकुमार तुम्हारे योग्य वर है" सुनतेही उसका मन कुछ हरा हो आया था, नेत्र सजल हो गये थे, उसके थोड़ेही समयान्तरमें न जाने किस सोचमें पड़ शय्या पर लेट गयी देखती नहीं ? बावलीसी होकर बेसुध पड़ी है ! जाना नहीं जाता कि इसे क्या हो गया है ?

का० । सखि ! जिस समय इसने राजकुमार को देखा था, उसी समय मन्दिरमें बेसुध हो गयी थी और जबसे वह इसकी आंखोंमें ओट हुआ व्याकुल हो रही है ; चित्त मलिन कान्ति क्षीण हुई जाती है।

त०। सखि! यदि राजकुमारी की प्रीति उस राजकुमार से हो गयी हो तो अच्छी बात है क्योंकि वह भी एक नरेशके लड़के हैं, जोकि हमारे राजा निर्बुद्धि हैं उनकी मति बेढब और बेतुकी है इसलिये सखीका ब्याह उस राजपुत्रसे होना अच्छा है धर्म और शास्त्रसे विहित है।

क०। हां सखि! यह प्रीति यदि दोनोंसे परस्पर हो गयी हो तो बहुतही आनन्ददायिनी एव मङ्गलकारिणी होगी? मैं देखती हूं इधर प्यारी तो उस पर लट्टू हो गई हैं और उस समय वह राजकुमार भी ऐसाही दीखता था, मानो किसी सुन्दरीके चञ्चल नेत्रों और आन्तरिक प्रेमसे बिंध गया हो और बावला सा स्वांग बनाये खड़ा था।

त०। हां सखि! वे दोनों परस्पर बातें भी इसी विषय की करते थे कि हम दोनों जा पहुंचीं;

क०। सखि! यदि राजकुमारी से पूछा जाता तो अच्छा होता और हमलोगोंका यह सन्देहित अनुमान ठीक है या नहीं निश्चित हो जाता?

त०। (विद्याका हाथ पकड़कर) प्यारि! क्यों इतना बेसुध हुई जाती है? मानो किसी मदकी सतायी हुई हो?

वि०। (सगबगाकर) प्यारि! क्या कहूं, आज मन्दिरमें देवीपूजन समय कोई ऐसी बयार नहीं कि जिसका अधिकार हमें क्षण क्षण बावला बना रहा है।

क०। सखि! यह अनुमान तो हमारा भी था और अब हमारा मन तुमसे अपने अनुमानकी सत्यता पाकर अधिक हुआ है; क्योंकि वे तुम्हारे योग्य वर तो हुई हैं, तुम्हारे वंशमें और भी कई एक पुत्रियोंका गन्धर्व रीतिसे विवाह हो चुका है, इस कारण यह कुछ नयी बात नहीं है? हमारे राजाका

विचार बहुतही अनघड़ है, यदि बिना प्रयास हो तुमको ऐसा सुपात्रयदि मिल जाय तो सहजही में दुःख दुर्गति टले, क्योंकि तुम्हारी उस बड़ी बहीनका दुःख जो टिप्पणी मिल जानेहीसे बेजोड़ व्याह होकर विधवापनमें हो रहा है, सारी प्रजाको दुःखी कर रहा है?

(नेपथ्यमें से—सावधान! सावधान!! राजकुमार रानीके शयनागारमें आ गये।

सब चौंक उठती हैं।)

पटाक्षेप।

इति प्रथम गर्भाङ्क।

द्वितीय गर्भाङ्क।

जवनिका उठती है।

स्थान—विद्याका महल।

(विद्या अपनी कन्दला और तड़िता सखियोंके साथ और विनोद अपने सखा सुरेशके साथ यथा स्थानस्थित।)

न०। (सुरेशसे) प्रिय पथिको! आज इस अनजाने नगर में रहने से आपलोगोंके बहुत दुःख हुआ है; प्रत्येक प्रकारसे न्यूनता हुई होगी?

सु०। प्रिय सुन्दरियो! यह कहावत तो सत्यही है; कि "परदेश कलेश नरेशन को" फिर आप राजगृहके यहां से भी हमलोगोंका कुछ खोज नहीं!! तो क्या हो आपके अधिकार का यही कर्त्तव्य है? आपकी दयाका यही प्रभाव है? आपकी रीति और नीतिका यदि यही परिणाम है? तो हमलोगोंको

भी स्वीकार हैं किन्हीं लोगोंका वचन है कि "जैसी वहै बयार पीठ वैसेही कीजे"।

ग०। निस्सन्देह यह हमारे गृहका अपराध है जब आप लोग हमारे द्वारपर आ टिके हैं तो अवश्यही हमको उचित है आपका खोज करूं, परन्तु हमसे नहीं हो सका, हमारा राजगृह इस अपराधके लिये क्षमा मांगता है?

सु०। निस्संदेह मैं क्षमा करता हूं, परन्तु साथही इससे डरता भी हूं कि जब हमारा राजवंश आपके राजगृहका आश्रयी होकर टीका तो उसे कहीं खटका न सहना पड़े?

ग०। नहीं! नहीं!! इस द्वारसे अयोग्य जनोंको अवश्यही खटका पहुंचाता है, यह सावधानी तो सब को चाहिये परन्तु आपका राजवंश इससे निःशङ्क रहे।

सु०। हमलोगोंका दिन भी तो इस नगरमें आज आनन्द से कटा, केवल एक बात यह थी कि किसी मधुरभाषी सज्जन प्रेमीसे समक्ष नहीं हुआ कि विशेष आनन्दसे दिन बीतता।

ग०। यह तो सत्यही है, आप ही लोगोंकी भांति इस महलमें भी आज उदासी रही, न जाने आज किस महावेदना से हमारी सखी क्षण क्षण बेसुध हो जाती थी।

सु०। परन्तु राजकुमार की उदासी तो आज निराले ढङ्ग की थी, इनका बावला स्वांङ्ग और सर्व्व ज्ञानशून्य शरीर आज इस निश्चिन्त भावसे दिन काटता गया मानो इनका ज्ञान, मन सब किसी परायेके हाथमें चला गया हो, अच्छा अब जो हुआ सो हुआ, बीत गई सो रीत गई, आप यह कहें राजकुमारीको हमने अभीतक अनब्याही सुना है क्या यह सत्य है? यदि सत्य है तो कारण बतलाइये, क्योंकि विवाहोपयुक्ता पुत्री परिवार हो क्यों वरञ्च ग्राम भरको मन लगती है।

क०। हमारी प्यारी योग्यवर नहीं पाती थी और पिता की मति बड़ी अनघड़ है; चाहते है कि वर कैसाही मूर्ख और अयोग्य हो, टिप्पणी मिल जाने पर व्याह कर दें परन्तु राजकुमारी इस मतसे निरन्तर नाहीं करती आती है, और यही नाहनह हमारी प्यारीके अवतक क्वारी रहनेका प्रधान कारण है।

सु०। (आपही आप) सत्य ही यह विधुवदनी विनोदचन्द्रके योग्य पात्री है, लक्षण और स्वभाव इसके अच्छे झलकते हैं, सुशील भी दीखती है, विद्वान भी है, अवश्यही इसका व्याह राजकुमारसे होना चाहिये, ईश्वर सहाय है तो परिणाम अच्छा होगा (विनोद और विद्या परस्पर नेत्र सञ्चालनहीमें एक दूसरे पर आसक्त हुए परन्तु लज्जाने मध्यमें सन्तोष देकर रोका।)

"नेपथ्यमें से घण्टा की ध्वनि आती है।"

त०। सखि! सन्ध्या हो गयी नित्यकर्म्म की वेला आयी अब विलम्ब नहीं होना चाहिये?

वि०। (चौंककर) क्या सन्ध्याका समय आ पहुंचा?

त०। हां सखि! अब पिता भी नित्य नियमानुसार आते होंगे; (सुरेशसे) हे प्रिय! अब प्रस्थान की वेला है मैं अपनी राजकुमारी की ओरसे (मुद्रिका परिवर्त्तन करती हुई) आप के राजपुत्र की सेवामें निवेदन करती हूं कि प्यारि! उनके मनसे विसर न जाय क्योंकि रनवासका ढङ्ग बड़ा अड़बड़ होता है।

वि०। अब मैं अन्तमें आपसे करबद्ध निवेदन करती हूं कि मेरी सुधि रखिये नचेत् हमारा मत, हमारी स्वतंन्त्रता, और उधर पिता की अनघड़ बुद्धि और बिचार एक टेढ़े परि-

यामको स्मरण कराता है अब अन्तिम, प्रस्थानका समय है पिता जी आते होंगे।

विनोद। मैं प्रार्थना सच्चे मनसे स्वीकार करता हूं आप की इच्छानुसार शीघ्र मिलूंगा।

(नेपथ्यमें से सावधान! सावधान !! की ध्वनि आती है।)

सबका प्रस्थान।

जवनिका-पतन।

इति तृतीय अङ्क।

चतुर्थ अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

जवनिका उठती है।

स्थान – राजा चन्द्रसेनका दर्बार।

(राजा चन्द्रसेन, मन्त्री और मुसाहिब अपने अपनेस्थान पर बैठे हैं सन्त हाथमें टिप्पणी लिये खड़ा है।)

रा०। कहो जो उपाध्याय जी! कहां की बनी ?

स०। महाराज! बनी तो कई जगह परन्तु ठीक और अटूट कहीं भी नहीं;

रा०। (चौंककर) हं, क्या अभीतक ठीक नहीं कर सके ? क्या विद्याके लिये वर ईश्वरने रचा हो नहीं कि गणना नहीं बनता ?

स०। नहीं महाराज! नहीं! नहीं!! ऐसा मत जानियें टिप्पणी तो बहुत स्थानोंमें बनी है परन्तु जो यहां तक आ जायं वही ठीक है ?

म०। हमने तो समझा कि कहीं की टिप्पणी ही शुद्ध नहीं बनी ?

सु० । हमारा सिर भी यही सोचकर चक्कर खा गया कि विद्या क्वारी ही तो नहीं रही ।

सन्त नहीं यजमानो ! ऐसा कब हो सकता है कि हमारे रहते भी विद्या क्वारी रहे ; (स्वगत) मानो हमो लोगोंके कहने और ठहराने से विद्याका व्याह हो चुका, नहीं जानते कि इस में बड़ी बड़ी आन्धियां उठेंगी ; कहां विनोदका उस प्रकार व्याह करके लौट जाना हमने कन्दला से सुना, और यहां ये सब किनारे ही बैठे गरई टोते हैं, अभी समझे हुए हैं कि विद्या क्वारीही है नहीं जानते कि थोड़ी देर है कि विद्या का गवना भी हो जायगा ?

रा० । क्या भुनभुना रहे हो ?

सन्त । कुछ नहीं महाराज ! विद्या को सुन्दर सुपात्र वर मिलते देख मेरा मन आनन्दमें लहरा रहा है ?

रा० । क्या ऐसा योग्य वर ढूंढे हो ? तब तो अहो भाग्य है, कहो इसीकी भांति वह भी तो, काली काली, चिचिड़ी खांचता और रात दिन नीति और धर्म्मको साग भात बनाये रहता है ? ऐसा तो नहीं न, कि ज्ञान ज्ञान, धर्म्म धर्म्म, दया दया, नरिया कर सिर खा जाता हो ?

स० । (स्वगत) यह ऐसा मूर्ख है कि विद्याध्ययन और ज्ञानोपार्जनको नरियाना और व्यर्थ बकवास ठहराता है ? हरे प्रभो ! तू भी कैसा अनोखा न्यायी है कि "जिनको कछू न चाहिये सो शाहनपति शाह"का न्याय करता है ; न जानै ऐसे मूर्ख को इतनी सम्पत्ति और ऐसा विभव, किस उद्योग वा पूर्व्व होकी कमायीका फल है ? सत्य है "राजा करै सो न्याय सदाहीं" देखें अनोखा फूल, यह लहराता आनन्द स्रोत, यह निर्म्मल सुहावना वस्त्र, यह अविनाशी कामधेनु, किस गधारके

हाथमें पड़ती हैं; देखें यह सुन्दर सुकुमार शरीर, यह बसन्तोप-रान्त पतझड़ सह कर निकलता हुआ झलमलाता कचनार कली, किस निर्दयी मत्तमातङ्गके पांवोंसे दलित किये जाती है, सुनते हैं ईश्वर सबको यथायोग्य समय और अवस्था देता है सबके अभावोंको पूर्ण करता है ; देखें। इस मूर्ख सूखी ठिठुरी बुद्धिमें ईश्वर की प्रेरणा और सर्व्व पालकता कैसे गड़ती है !!

सन्त। नहीं महाराज ! ऐसा नहीं ? वे कुमार बड़े धर्म-निष्ठ और सीधे हैं, ब्राह्मणोंको बहुत मानते जानते हैं, इसकी भांति नहीं कि पूजापाठसे भागते हों, वे सर्व्वदा कालीजी को भेड़ा और समरधीर बाबाको करिम्रवाजोड़ा, लुम्मापीर और इमाम साहबको तिलचउरी चढ़ाया करते हैं।

(द्वारपाल का प्रवेश।)

द्वा०। महाराज ! एक भाट और उसके पीछे एक ब्राह्मण लाठी टेकता द्वार पर पहुंचा है, आपका दर्शन चाहता है ; क्या आज्ञा है ?

रा०। शीघ्र लाओ ;

द्वा०। जो आज्ञा ! (बाहर जाता है।)

(नौरंग भाटका कंधायांधे हाथमें लकुटिया टेकते, बूढ़े पण्डितका प्रवेश।)

नौ०। (हाथजोड़ कर) महाराज ! हम नगर जाहिलके राजा ढोंगलसेनके भाट और ये उनके पुरोहित हैं ? ढ़ागलसेनने आप की पुत्रीसे व्याह करनेके अभीष्टसे हमको भेजा है ?

रा०। (सन्तसे) उपाध्याय ! इनके यहां नहीं गये थे ?

सन्त। महाराज ! गये तो थे परन्तु मुसाहिब जीने राज-दर्बारमें जानेसे हमको रोक दिया और यही कारण वहां से निराश होकर फिर आनेका हुआ।

रा०। (नौरंगसे) क्यों जी! यह क्या कहते हैं?

नौ०। हां महाराज! इनका कहना सत्य है; परन्तु राजा को यह सुनकर क्रोध हुआ था, सुसाहिबजी को तिरछे बांके सुनाने पर हमको आज्ञा मिली कि तुम जाओ, अब सब लोग सहमत हैं;

रा०। अभी टिप्पणी तो बने?

मन्त्र। टिप्पणी तो बनती है; हम देख चुके हैं केवल दर्बार में जानेका खटका था, नहीं तो सब ठीकठाक था?

पु०। हां महाराज! हम और आपके पण्डित अच्छीतरह देख चुके हैं कुछ कसर नहीं; टिप्पणी तो टकौरीके पलड़े की भांति तुल जाती है इसका सन्देह न कोजिये?

रा०। अच्छा! आपके राजा कह दीजियेगा यहां ब्याहे जायंगी मुझे स्वीकार है; यहांसे समुचित लग्न शोध करके भेजा जायगा, उसी दिन आवें अब कोई सन्देह नहीं है; जितना चाहें बारात लावें कुछ सन्देह न करें?

नौ०। हमारे राजानेभी कहा है कि सावधान रहें, केवल हमारी बारातको पानी पिला देंगे, अन्नादि कुछ नहीं चाहते?

रा०। अच्छा! हम देखेंगे वे कितनी बारात लाते हैं? जहां तक उनसे हो सके उठ आवें, सब चीजोंसे गलेला दे दिया जायगा।

पु०। अच्छा! उसी दिन आपका गलफना देखा जायगा?

(एक ओरसे नौरंग बूढ़े को लिये, दूसरी ओरसे राजा, मन्त्री और सुसाहिब को लेकर जाते हैं।) पटाक्षेप।

सबका प्रस्थान।

इति प्रथम गर्भाङ्क।

दूसरा गर्भाङ्क।

स्थान—विद्याका शयनागार

(विद्या शय्यापर मलीन मुख शोकाति बैठी है। तड़िता पानका डब्बा लिये सामने खड़ी है)

त०। प्यारी तुम्हारी छवि इन दिनो क्यों मलीन हुई जाती है? मानो किसी रोगके पाले पड़ी हो।

वि०। सखि! क्या करूं, वह मनहरण, हमको स्वप्नमें भी नहीं भूलता!

(आतुरता शीघ्रतासे कन्दलाका प्रवेश)

वि०। (आतुर होकर कन्दलासे) सखि! राजदर्बारमें तो सब कुशल है न?

क०। (मुंह बनाकर) सखि! कुशल ही परन्तु.

वि०। क्या परन्तु?

क०—आज एक विशेषता यह है कि तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध और सहवास चणभंगूर रह गया।

वि०। क्यों?

कं०। इस लिये कि राजा ढौंगलसेनसे तुमहारा व्याह होगा यह दर्बारमें आज भली भांति निश्चय और ठीक होगया लग्न, बार, मुहूर्त्त सब धरा गया बारात आना चाहती है।

त०। (चौंककर) हां? यह क्या!! अरे वह ढौंगल!!! जिसे सन्त कहता था कि कई व्याहकर चुका! और जिसने पुत्र होनेकी चेष्टासे कोई निकृष्ट कर्म्म शेष नहीं रखा!!!

कं०। (मुंह बिचकाकर) हां सखि वही ढौंगलसेन।

वि०। अरी सखियो! तुम लोगोंको भी न जाने कहां को सूझती है, भला ऐसे वैसेके कहने करनेसे विद्या क्या महा आनन्द*से वञ्चित हो सकती है?

कां०। नहीं प्यारि! परन्तु एक कण्टकका मार्गमें खड़ा होना, पथिको कुछ रोक न देता है? और यह शङ्का होती है कि कहीं बढ़ते बढ़ते बाधक न बन बैठे!

वि०। हां यह तो ठीक है, परन्तु क्या हुआ अच्छे कामोंमें तो विघ्न होते ही हैं और ऐसा कोई काम हुई नहीं जो निर्विघ्न हो।

त०। सखि! इसका परिणाम दुःखदायी होगा मेरा मन हामी भरता है।

कां०। सखि हामी भरना क्या, मैं सत्य कहती हूं विद्या को ढोंगलके यहां जाना होगा यह हमारे सम्मुख नाच रहा है।

वि०। अच्छा यह सब तर्क वितर्क जाने दो उस समय देखा जायगा ढोंगलके यहां जाना और व्याह होना बात है, हमारा वह महा प्रमोद, कोई छीन लेगा थोड़ेही?

कां०। सखी! यह समाचार राजकुमारको भेजना चाहिये।

त०। अवश्य! अवश्य!! शीघ्र! शीघ्र! शीघ्र!! शीघ्रही राजकुमारके यहां भेज दिया जाय, सखी एक पत्र लिखकर दो मैं बलाहकके हाथ भेजा दूंगी;

वि०। बहुत अच्छा सखि। यदि तुम्हारी यह इच्छा है तो लो मैं लिखती हूं स्मरण रखना कहीं ऐसा न हो कि पत्रिका मध्यहीमें रह जाय।

* यह राजा विनोदचन्द्रका उपनाम है।

त०। नहीं सखी! ऐसा नहीं हो सक्ता।

वि०। (लेखनी लेकर लिखती है)

विद्या रसिक सुजान! नवल कुसुमनके प्रेमो!
सुन्दर ज्ञान निधान, प्रचारक प्रेमहर्नेमो!
प्रीति किये पै सुधिनाहिंलोना, नेह लगाय दुसह दुखदीन्हा।
हरिमकरन्द भवन अचितोरा, छिटकन लोग वरस चहुंओरा।
विरह विथादिनरैन सतावे, पापो मदन अधिक भरमावे।
रहि रहि धार बहावें नयना, सब विधिहगे रहू दुखदयना।
इतने दिवस जुगावेउं याती, अब मैं हाथ पराये जाती।
प्रावहुपिय जनिवार लगावो, सकल खलन कहं काट बहावो।
पिता मन्दमतिकर परिणामा, करत सशङ्कित हतविश्रामा।
यदि धन परहीखें बहु तस्कर, शीघ्र उबारहु वाह बढ़ा कर।
विद्या लेहु रसहुले लेहु सुन गोपालविनय मम येह।

(लिखकर और बन्द करके वलाहकके हाथ देती है।)

त०। (वलाहकसे) तुम चले जावो! शीघ्र राजकुमार विनोदचन्द्रको यह चिट्ठी पहुंचावों।

व० ह०। (हाथ जोड़कर और चिट्ठी लिये हुए) जो आज्ञा (जाता है)।

(वलाहकका प्रस्थान)

नेपथ्यमें। महाराज नागरपुराधोश राजकुमारोके महलमें आ गये सावधान!

नि०। (चौंककर) सखि! आज पिताजी किसी कार्य्यके लिये यहां आते हैं? (सावधान होकर योग्य आसन देती और खड़ी हो जाती है।

राजा का प्रवेश।

रा०. बेटि! हमारा सब स्वागत इसीमें है कि हमारा

आग्रह स्वीकार करो ; विशेष प्रतिष्ठा, मान, गौरव हमारा इसीमें है ?

वि०। पिता ! आप इस विषयमें विशेष कुछ न कहें, अब मैं स्वतन्त्र और इस विषयमें वार्त्तालाप करने योग्य नहीं हूं ?

रा०। बेटि ! हम नहीं समझते, तुम क्या कहती हो ; क्या तुम अपने शरीरका अधिकार नहीं रखती ?

वि०। निस्सन्देह यह शरीर अब विद्याका नहीं है ; यह महा आनन्दके आधीन है ?

रा० च०। मैं समझता हूं अब विद्या पागल हो गयी है ; इसको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मैं क्या कह रहा हूं ;

वि०। अब अच्छा होगा यदि मुझे इस विषयमें कुछ कहने का अवसर न दें, परिणाम इसका अच्छा नहीं है ?

रा०च०। अब मैं जाता हूं,परन्तु कलसे एकपक्ष है तुमको ढोंगलसेनके यहां जाना होगा यह कभी टल नहीं सकता ; यदि अपना भला चाहती हो तो उसके पहले अपने स्वीकारका सन्देशा हमको भेज देना नचेत् तुम जानो ?

वि०। (कान बन्दकर लेती है। स्वगत) हे प्रभो ! ऐसे पिताका मुख देखते भी पातक होगा, पर क्या करूं असमर्थ हूं।

(चन्द्रसेनका प्रस्थान।)

(विद्या उसी स्थानमें पूर्व्व पड़ीहुइ शय्या पर उदासीन मुख लेट जाती है।)

त०। (कन्दलासे) प्यारि ! यह तो बड़ा अनर्थसा दीखता है ?

क०। सखि ! अनर्थ हुई है देखें, इसका परिणाम क्या होता है ? हमने सुना है कि ढोंगलसेन यदि मांगमें सेन्दुर न

पड़े तो भी ले जानेको खड़ा है, वहां ले जा कर अपने महलों में कर लेगा ?

त०। सखि! राजकुमारी की प्रतिष्ठा और धर्म्म रचा, ईश्वरके हाथ है; वही जो चाहें करें, हमलोगोंका कुछ चारा नहीं ?

क०। हमलोगोंका अधिकार क्या है? न जाने विनोदचन्द्र कब आवेंगे! बलाहक वहां कब पहुंचेगा! तब तो हम देखते हैं राजकुमारी ढोंगलसेनके महलोंमें पहुंच जायंगी ?

त०। इसमें क्या सन्देह है, वह तो अवश्य ही विदा कर दी जायगी ?

क०। और प्यारी की जो दशा है देखती ही हो, सब धोया, सपरा, किया, कराया, मिट्टी हुआ चाहता है; सखि! देखें यह बेमाझी की नाव किस किनारे लगती है ?

त०। बहिन! राजकुमार को छोड़कर दूसरा कोई हमारी प्यारी को नहीं पा सक्ता ? क्लेश और कठिनाइयां चाहे कितनी ही पड़ें;

क०। सखि! बड़ी शङ्का है कि राजकुमारी ढोंगलसेनके महलोंमें जा कर भी अपना सतील और धर्म्म कैसे निबाहेगी !!

त०। सब ईश्वर निबाहेगा, प्रतिष्ठित की प्रतिष्ठा वही रखता है; वह एक अनोखा खिलाड़ी है, हरि को हरतरहसे प्रसन्न और सन्तुष्ट रखता है, उसका नाम पालक है, सब को पालता है; यह उर्व्वव्यापी है, सर्व्वत्र विराजमान है; कुछ चिन्ता नहीं है, वही सब करता धरता है ?

क०। सत्य है सखि! हमलोगोंका हड़बड़ाना व्यर्थ है ?

वि०। सखियो! क्या तर्क कर रही हो ?

क०। तुम्हारी दशा पर शोक और पछतावा झोंकती हूं !

वि० । कुछ सोच मत करो, हमको यह न समझो कि मैं सोचमें हूं ?

त० । तब प्यारि तुम्हारा चन्द्रानन क्यों सूखा जाता है ?

वि० । इन सब रोगाक्रान्त दशाओंके कारणमें महाआनन्द का वियोग ही कहा जायगा । (इतना कहकर शोकार्त्त हो कर लेटती है ।)

(तीनों विस्मयचित्त मलीन मुख बैठी हैं, नेपथ्यमें बारातका कोलाहल सुनाई देता है ।)

"पटाक्षेप ।"

जवनिका गिरती है ।

इति चतुर्थ अङ्क ।

पञ्चम अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(जवनिका उठती है ।)

स्थान—राजा ढोंगलसेनकी कचहरी ।

(ढोंगलसेन राजा, स्वार्थचन्द्र दू० मु०, विवेकी प० मु०लोका-पीटन मन्त्री, यथा स्थानस्थित है'।)

ढों०से० । (सब लोगोंसे) अब कहिये । इतनी कठिनाइयां झेलकर तो यह व्याह किया, व्याह क्या किया, इसे तो समरव्याह कहना चाहिये ; बिना सिन्दुर बन्धनादिके कन्या विदा करा लाये । अब हमसे कभी प्रसन्न होकर बोलती भी नहीं, जहां देखती हैं पिता कहके पुकारने लगती है, दवा दरपन झाड़फूंक तो बैठा रहे, उसको दोनों सखियां एक निराला ढङ्ग बनाये रहती हैं, कभी कहती हैं, आंखें दुखती हैं, कभी

माथे में दर्द बताती हैं; हम कभी जाने तो पातेही नहीं. देखना बोलना तो अलग रहे।

ली० पी०। हां साहब! इस आज्ञा की भनक हमारे कान तक भी पहुंची है क्या सत्य ही है?

ढोंo से०। हां आज को हमारी अन्तिम आज्ञा तो यही है देखें परिणाम क्या होता है?

विवेकी। परिणाम भी अब थोड़े समय में सामने आ जायगा, अभी तो आज्ञा की भनक न आपलोग पा रहे हैं; इसीतरह से आपके कान को थोड़ी देरमें परिणामका धक्का भी सहना पड़ेगा आतुर न हूजिये।

खा० च०। अब तो देखें परन्तु बड़ा अनर्थ दीखता है, ईश्वर करे यह सब क्रूरग्रह शुद्ध और सन्तुष्ट होकर शीघ्र दाहिने हो जायं;

विवेकी। देखें दाहिने होते हैं कि कानो, माथे चढ़ते हैं?

खा० च०। आप तो योंहो बेतुकी हांका करते हैं अवसर देखकर नहीं कहते?

विवेकी। अच्छा हम बेतुकोही सही आप हो तुपकदार और म्यां तानसान वंशी बनिये! बड़े भारी बन्दोबस्तदार हैं; पुत्रोत्पादनके वस्त्र पहने हुए पांचवे सवार हैं, देखा चाहिये किसकी टंगरीमें से शृगाल निकालता है?

खा०च०। बस! चुप रहिये भांड़पना मत छांटिये?

ढोंo से०। सब लोग गलसल बन्द कोजिये?

लीoपी०। राजाजो को आज्ञा है वलवलाहट बन्द हो;

विवेकी। कहां जट बलबलाता हैं जाइये मना कर आइये;

ली०पी०। आप हरदम छींटछोड़ा करते हैं?

स्वा०च० और ली०पी०। (झपटकर) आपसे बस बेतरह तुक्का दियां करते हैं, समझै न बूझै कठौता ले जूझै, का उदाहरण बनते हैं ?

ढीं०से०। (क्रुद्ध होकर) चुप रहें ! व्यर्थ बोलने से नियम तोड़नेवाले समझे जा कर दण्ड पावेंगे ?

(भयचक हो कर एक दूसरेका मुंह ताकते हैं।)

"पटाक्षेप।"

इति प्रथम गर्भाङ्क।

द्वितीय गर्भाङ्क।

पटोत्तोलन।

विद्याका नवीन शयनागार।

(पर्दे के बाहर ढींगलसेन खड़े हैं।*)

ढीं०से०। तुम नहीं मानती और अब बहुत कम समय है अर्थात् वह समय पहुंचा चाहता है कि तुमको देश निकालने का दण्ड मिलेगा ?

वि०। (पर्दे के भीतरसे) पिता! आप जहां चाहें निकाल दें, एक पिताने आपके यहां भेजा आपभी जहां चाहें भेजे मुझे स्वीकार है, आप की आज्ञा भी पिता की भांति शिरोधार्य है ?

ढी०से०। (चारो ओर देखता हुआ) कोई है। इसको ले जाकर उस झङ्गाड़ वनमें छोड़ आवो जहां नित्य व्याघ्रोंकी गुंजान ध्वनि छोड़कर कुछ सुननेमें नहीं आता ? अब विलम्ब

---

*पटोत्तोलनके बाद स्टेज पर एक कपड़ेका छोटासा पर्दातना होना चाहिये जिसके उस ओर सखियों सहित विद्या और इस ओर राजा खड़ा होवें।

न हो, (सखियोंसे) सखियो ! हमारा अब कुछ दोष नहीं, यह इसी योग्य है कि ऐसा दण्ड पावे, अब तुम दोनों अपनी नगरी में भेजी जाती हो और यह उसी बनमें जायगी जहां हमने अपने चाकरोंको आज्ञा दी है ?

क०। (पर्देमें से) महाराज! हमलोग कुछ नहीं कह सकतीं, ऐसी विद्यावती और चतुर विद्याको क्या शिक्षा दूंगी ? आप जो चाहैं सो करैं आपका अधिकार है ;

टों०से०। अब हमारा अधिकार यही कहता है। (विशेष क्रुद्ध होकर आंखे तलमलाना और क्रोधातुर होना नाट्य करता है) बस ! इब बिलम्बका क्या कारण है ?

नेपथ्यसे। महाराज पहुंचा जो आज्ञा शिरोधार्य है ?

"पटाक्षेप ."

(जवनिका पतन।)

इति पञ्चम अङ्क।

षष्ठ अङ्क।

(जवनिका उठती है।)

स्थान—विनोदका भवन।

(विनोद और सुरेश यथा स्थानस्थित हैं।)

सुरेश। प्रिय राजवंशविभूषण ! आप की कान्ति इन दिनों बड़ी मलीनसी हो रही है, मानो किसी सोचके झकारने आप का चन्द्रानन चाट लिया है ?

विनोद। महामान्य ! मैं तो इस समय आरोग्य हूं किसी तरहका दुःख नहीं है, परन्तु न जाने आज हमारा चित्त उस मनमोहिनीके स्मरणसे क्यों बावला हो रहा है ?

सु०। निस्सन्देह वहांका समाचार जाननेको मेरा मन भी उत्सुक है;

वि०। आज हमारे मनमें तर्कतरङ्गने एक निराला भाव बांधा है और मैंने आज रात को एक स्वप्न देखा है न जाने इसका परिणाम क्या और इसकी सत्यता कहांतक है ?

सु०। आपने क्या स्वप्न देखा है ?

वि०। हमने आज रातको एक यह ढङ्ग देखा है कि विद्या को कोई अनपढ़ मूढ़ ब्याह ले गया है ? यद्यपि वह अस्वीकार करती है और सेन्दुर बन्धनादिसे नित्य नहीं किया है तिस पर भी बलात्कार बिदा कर दी गयी है।

सु०। हां ! हां !! फिर !!!

वि०। पुन: वह मूर्ख बड़ा क्रुद्ध हुआ है और उसे निर्जन बनमें उसको सखियोंसे भी अलग करके खेद दिया है ;

सु०। फिर ! फिर !!

वि०। और वह रोती हुई उसी बनमें चली गयी है।

सु०। हं ! हं !! तब !!!

वि०। अन्तमें उसका रूप एक योगीसा हमको दिखायी दिया है अर्थात् वह साधुके वेषमें पुरुषका स्वाङ्ग धरकर बिल-खती और हमको खोजती है ?

(द्वारपाल आता है।)

द्वा०। महाराज ! एक धावन हांफता हुआ द्वारपर खड़ा है, गांव नागरपुर कहता है और आनेकी आज्ञा मांगता है ?

वि०। शीघ्र लाओ ?

द्वा०। जो आज्ञा !

(बाहर गया)

वि०। (सुरेशसे) देखिये क्या सन्देशा लाया है ?

सु०। अब तो सब जाना जायगा।

(द्वारपालके साथ बल्लाहकका प्रवेश।*)

बल्ला०। महाराज! नागरपुरके राजा चन्द्रसेनकी पुत्री विशाका यह पत्र है; (पत्र हाथमें देता हुआ) लीजिये?

वि०। (हाथमें लेकर खोलता है और पढ़कर सुरेश को सुनाता है) मित्र सुनिये लिखा है;

"प्रिया रसिक सुजान! नवल कुसुमनके प्रेमी!
सुन्दर ज्ञाननिधान! प्रचारक प्रेमसुनेमी!!
प्रीत किये पै सुधि नहीं लीना,
नेह लगाय दुसह दुःख दीना।
बढ़ि मकरन्द मवनं अति थोरा,
छिटकन लागेउ रस चहुं ओरा।
बिरह बिथा दिन रैन सतावे,
पापी मदन अधिक भरमावे!
रहि रहि धार वहावें नैना,
सब बिधि भगी चहुं दुख दयना।
इतने दिवस जुगायेउं थाती,
अब मैं हाथ पराये जाती।
आवहु पिय जनि वार लगाओ,
सकल खलन कहं काटि बहाओ।
पिता मन्दमति कर परिणामा,
करत सशङ्कित इत बिश्रामा।
यहिं धन पर दीखें बहु तस्कर,
शीघ्र उबारहु बांह बढ़ाकर।

* आगे द्वारपाल पीछे लम्बा जामा फटी पगरी, एक हाथमें बकुली, दूसरेमें एक बन्द चिट्ठी लिये हुए।

विद्या लेहु रसहु लै लेहु,
सुन गोपाल विनय मम एहु।

आप की दासी
"विद्याधरी।"

(बलाइकसे) कुछ और जानते हो ?

बला०। हां इतना जानता हूं कि हम इद हो जाने से पीली वेगसे आते थे और तभी उसका व्याह हो गया, और वह मायके के यहां से बिदा हो कर राजा ढोंगलसेनके यहां जाती थी, अपनी आंखों देखा ; और अपने सगोत्रियों से जो रानीके साथ थे सुना कि सिन्दुरावन्दन नहीं हुआ परन्तु बलात्कारसे राजाने उसे विदा कर दिया है, इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।

वि०। बस ! बस !! हमारा सब स्वप्न सत्य है ;

सु०। निस्सन्देह सत्य है ; पर अब क्या करना चाहिये, यह देखा जाय ?

वि०। अब आप कुछ न कहें, मैं जो चाहुंगा सो करूंगा आप अपना कार्य्य देखिये मैं तो अपनी प्यारीको देखूंगा, शान्ति से मिलूंगा नचेत् अब हमारे जन्म जीवनका अन्त है ?

सु०। (चौंककर) हं ! आप न जाने आज क्यों ऐसी रूखी सूखी बातें सुनाते हैं ? मेरा मन इस समय अत्यन्त दुःखी है ;

वि०। बस ! बस !! मैं अब बावला हूं, कुछ सुध नहीं है ; मेरी बातें किसके लिये कैसा भाव उत्पन्न करेंगी, मैं कहा हूं, क्या करूंगा, क्या करना चाहिये, कुछ ज्ञान नहीं है ? बस ! मैं ज़ोरसे कहता हूं सब लोग सुनो ! मैं बावला हूं ; (बावलापन और वेहोशीका नाट्य करता है) मैं अब योगी हूं नहीं ! नहीं !! वियोगी हूं, मैं मनुष्य नहीं एक साधु और

भूखा हूं, राजकुमार नहीं एक दीन यतीम हूं, राजवंशज और माता पिता सम्पन्न नहीं, मैं यती हूं; बस मैं योगी, परमहंस योगसाधनमें बावला! बावला!! बावला!!!

सु०। आप को यह क्या गति है? क्यों इतना अधीर होते हैं? लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? भली सहवासका क्या फल हुआ इस सार्व्वभौमिक खप्रका उत्तर हम क्या देंगे?

वि०। बस! आप चुप रहें, कुछ न कहें, आप को मैं यहां से प्रस्थान करनेको कह चुका हूं, आपके प्रश्नोंका उत्तर दे चुका हूं; आप की बातोंके न सुनने तथा ध्यानमें न लानेका कारण बता चुका हूं; अत: मैं निर्दोष! मैं पागल! बस कुछ नहीं खाली पागल! बस चुप! पागल! चुप! चुप! चुप!! पागल! पागल!! पागल!!! अथवा यों कहिये, बावला! बावला!! बावला!!! (विकलता और आतुरता नाट्य करता है और छड़ी दुपट्टा संभाल कर प्रस्थान करना चाहता है।)

(बलाहकका प्रस्थान।)

(सुरेश आश्चर्य्यान्वित हो कर मौन हो विनोद पागलसा बकता है।)

जवनिका पतन।

इति षष्ठ अङ्क।

सप्तम अङ्क।

जवनिका उठती है।

स्थान—जङ्गल।*

(विद्या साधुके वेशमें घूमती है।)

विद्या०। (करुणास्वरसे) प्रभो! आज हमारी क्या दशा है? आज हमारा सब सुख, हमारी सब सम्पत्ति, हमारी सब सामर्थ्य, हमारी वह प्यारी सखियां किस काम आती हैं? हा प्यारि कन्दला! क्या तूने भी जन्मका साथ छोड़ दिया, तुमसे भी ऐसा वियोग हुआ कि अब साथ नहीं हो सकता? हा प्यारि तड़िता! क्या तूने भी मुझे भुला दिया हा! क्या करूं. कहां जाऊं किससे क्या कहूं यहां तो चारो ओर वृक्ष और पट पर मैदानको छोड़ कुछ हई नहीं है, क्या करूं? (कातर स्वरसे चारो ओर देखती हुई।)

लावनी।

(१) कहां गयी वह सखी कन्दला, कहां गयी तड़िता प्यारी?
कहां गयी नागरपुर नगरी, कहां गयी परजा सारी?
कहां गयी वह देवी मन्दिर, बाग बागचा फुलवाड़ी?
कहां छिपी मम गृहकी शोभा, जहं मन्दिरथा सदनारी?

(२) कहां गये वह कूप बावली, रहे सरोवर गर्राते?
मुंदे कमल अनगिनित थे, जिनमें बंधे भ्रमर थे भन्नाते।

---

*स्टेज की (दर्शक मण्डली से) विपरीत दिशामें कुछ दृक्षोंकी डालियों को रखकर रोशनी कम करना चाहिये।

खिलीं कुमुदिनी कमल थे जिनमें रहे परस्पर टकराते।
लखिके शोभा अनुपम जिनकी, बासव भी थे चकराते।
(३) धिमी वेगयीं बहती नदियां, निर्मल जल, जलचर थे
जिनमें।
शीतल मन्द सुगन्धित वायु सांझ सवेरे खातीं तिनमें।
नित जा जाकर मोदथि करती, सुख लेतीथीं जिन सह
जिनमें।
वे सब कहां गये गोपालन रहे विचरते जो गाहनमें।

लावनी।

(१) चली खोजती मैं पेशूवरसे अमृतसर और अम्बाला।
(२) कोट कांगड़ा अभयकुण्डसे सप्पाटू भी मथडाला।
(३) गिरी सहारनपुर और मेरट चली कमायूं तरियानी।
(४) फिर दिल्लीसे पूर मुज़फ्फ़र हाथरसे मथुरा आनी।
(५) लखी कालपी और बटेश्वर आगरामें भी नहिं प्यारा।
(६) गयी कलपती और सिसकती खोज फिरी शहरों सारा।
(७) शहर मुरादाबाद बरेली मिरजापुर विथ्या जाती।
(८) गली गली मैं फिरी बनारस गाजीपुर भी नियराती।
(९) गङ्ग उतर चढ़ि सड़क रेलमें गहमर बक्सर भरमाती।
(१०) बांकीपुर पटना भी ढूंढ़ी खबर पिया की नहीं पाती।
(११) नगर मुकामा तीनपहाड़ो राजमहल भी मथ डारा।
(१२) गयी कलपती और सिसकती खोज फिरी शहरों सारा।
(१३) पुर जमाल और साहबगञ्जसे गयी रामपुर नलहटी
(१४) कलकत्ता और नदिया लस्कर हुगली भरमी सब भट्टी।
(१५) बादमुर्शिदा गयी सेवड़ी वर्द्धमान वाली चट्टी।
(१६) घूमि पर्गना सब चौब्बोसो कटक पुरीसे फिर लौटी।
(१७) गयी पलामू बागहजारी मानभूम जङ्गल सारा।

(१८) गयो कलपती और सिसकतो खोज फिरी शहरों सारा ।

(१९) चलि राजनगर अमयर पन्ना, दतिया चिनवर सो टौंक ।

(२०) रीवां झांसी और ग्वालियर जब्बलपुर सगरोंकी झांक ।

(२१) बाटतृगञ्जा खानदेशमें पूना नासिक नौरंगांव ।

(२२) भ्रमि भूपालों बाटहैदरा राजमहिन्द्री वस दरपांक ।

(२३) कड़प गदूर नेलूर बनारो गुलबर्गा गलियों मारा ।

(२४) गयो कलपतो फिरो सिसकती खोज फिरी शहरों मारा ।

(२५) गयो खोजतो करमगड़नकी पहुंच मिनारे में बिरही ।

(२६) फो अमतरवौं कोय्यू कोनम, पार उतर गयो कावेरी ।

(२७) भ्रमि मैसूरी रङ्गपटनमें रामेश्वर भी जा देखो ।

(२८) पग्यो तिर्चुना राजकुमारी कालीकोट भी पेखो ।

(२९) मलावार गोवामें पहुंचो वेलगांव औ धरवारा ।

(३०) गयो कलपती पहुंचसिसकती नहीं पाया अपना प्यारा ।

(३१) बाडसिकन्द्रा सावन्तवाड़ी खाड़ी भाड़ी मरितन दूर ।

(३२) कोकन सूरत रत्नगिरि भी थाना देखा शोलापूर ।

(३३) महाबलेश्वर और सितारा गयो पहुंच तब लियहस्कर ।

(३४) खोजी महाआनन्द नहिं पायो रोयो वहां बैठि भरपूर ।

(३५) खड़ी हुई उठी पहुंची बम्बई सात दिनोंभरमो मारा ।

(३६) गली गली गोदोमें ढूंढ़ी नहीं पाया मनका प्यारा ।

(३७) चली नगर गुजरात घूमती काटियावाड़ सभी घूमी ।

(३८) खेड़ासे अहमदाबाद अहमदा रह रतलाम नगर झूमी ।

(३९) जा इन्दौरा गढ़ अमीरमें पहुंच इलचपुर फिर घूमी ।

(४०) गयो ढूंढ़ती नफर खण्डवा गयकवाड़ बड़ौद भरभो भूमो ।

(४१) पहुंचो खोजत पुर सारङ्गे नीमच कम्पभी भ्रमि डारा ।

(४२) गयो कलपतो पहुंच सिसकती ढूंढ़ फिरी शहरों सारा !

(४३) सरवर पुष्कर राजपुताना बीकानेरऽ जैसलमेर ।

(४४) जयपुर युदपुर और अजमेरा फ़ेरसे पहुंची फ़ेरे फ़ेर।
(४५) गयी पहुंचो जब रैतवालू भक्कर ग्रक्कर रोड़ोचोट।
(४६) छुमी किरांची बन्दर भरमी ठट्टाबे फिर मिठ्ठनकोट।
(४७) लइयावे फिर खांड़आइल देरा सिंध सब मथडारा।
(४८) गयीं कालपती फिरी खिसकती नहिं पाया अपना प्यारा।
(४९) झेलमझङ्ग सुलतान भी भरमी चम्बा मण्डो और सुंकेत।
(५०) चढ़ि पटियाला खांपिण्डदादन कालाबाग पेशावर चेत।
(५१) घूमी हिन्दमें सगरी गलियां पाया नहिं प्यारे का खेत।
(५२) खोजखाजहूं या पहु चा यहांपर हुईहुं बेसुध और अचेत।
(५३) ताकूं ओर कहूं नहिं देखूं कहां गया मेरा प्यारा।
(५४) रही कालपती और खिसकती दीखे नहीं वह ठगहारा।

(भजन "ऐसो को उदार जगमाहीं, बिनु सेवा जो द्रवे दिनन पर राम सरिस कोउ नाहीं" इसो धुनिमें।)

कहां गये नैननके चोर।

गड़िगड़ि उठत कसकत मम हियमें बांकी चितवनि तोर।
रहि रहि खाउ धसाका प्यारे काहे कियो चित जोर।

कहां गये०

बन बन घूमि पियां तोहि ढूंढ़ो पायी नहीं सुधि तोर।
चढ़ि अवस्था रस कहुं छटके आई न लेहु बटोर।

कहां गये नैननके चोर।

प्रीत लगाय बढ़ायो प्रेमहि, रुचि रुचि बात करोर।
सञ्चित सम्पत्ति हाथ पराये, जाती लेहु मरोर।

कहां गये नैननके चोर

याती लुगई बहु प्रकार अब. कछु न चले बस मोर।
आइ लेहु देहु फारखती मोहि, उऋण करहु दुख छोर।

कहां गये नैननके चोर।

(थककर) हा! इतना पुकारा पर कहीं उस हंसते ठग की आहट न पायी, हरे प्रभो! क्या जगसे हमारा प्यारा उठ गया? अथवा हमारा नागपुरसे विदा होना सुन कर विदा हो गया? या उसने संसारके सारे झंझटों को छोड़ सुरपुर की आड़ पकड़ ली? या हमारी चन्द्रला वा तड़िता सखियों को ही पाकर सन्तुष्ट हो बैठा? (सावधान होकर) हरे! यह क्या? बेलगाम, बावली सी बक रही हूं! किससे कहती हूं! कौन सुनता है? इस कहनेका उत्तर कौन देगा? अथवा मैं किससे मांगती हूं? हरे शङ्कर! ऐसी दशामें बुद्धि भी हमारी तूने ले ली; अब हमको सावधान हो जाना चाहिये। (नेपथ्य की ओर देखकर) यह कौन आता है? कोई साधु तो नहीं है? हां! हां!! साधुही हैं क्योंकि हाथमें कमण्डलु है; माथे में जटा है, अङ्गोंमें भस्म रमाये हैं, यह तो कोई बड़े सिद्धसे दीखते हैं; इनसे कुछ बात करनी चाहिये, जान पड़ता है, हमारी शोकार्त्त ध्वनियोंके सुनने से इधर आते हैं (आंसू पोंछती है।)

(हाथमें कमण्डल, माथे पर जटा, सर्व्वाङ्गमें विभूति रमाये एक महात्माका प्रवेश।*)

वि०। (साधुसे) महाराज! आप किधर से आ पड़े, मैं तो यहां बहुत दिनोंसे हूं, आजतक आप को छोड़ कोई भी आंखोंके सम्मुख नहीं आया था; न जाने आज किस ओर से ढल पड़े?

सा०। आपका स्थान कहां है? यहां क्या करते हैं और किस अभीष्ट वा क्लेशने आप की यह दशा कर रक्खी है?

* एक हाथमें घड़वा अर्थात् बड़ा वाभ्रम-कमानासी उठा।

वि० । मैं अपां [illegible] ढूंढता हूं ; जिसने हमारी यह दशा कर रक्खी है ;

सा० । मैं तुम्हारे मनमोहनका खोज लगा दूंगा ; यदि हमारी कुटीमें आप चलकर रहें, और अपने मनहरणका चिन्ह बतावें ?

वि० । मैं यहांसे कहीं नहीं जाऊंगा, जिस दिन देशसे निकाला गया, उसी दिनसे अपना बिछौना पृथ्वी और ओढ़ना आकाश बना लिया, अब हम कुटी काटोमें जाना नहीं चाहते ;

सा० । यह तो सत्य है, परन्तु मैं चाहता हूं आप की व्यवस्था सुनूं ;

वि० । हमारी सब व्यवस्था आपके सामने है, कुछ छिपी नहीं है ?

सा० । नहीं ! नहीं !! वह सब समाचार कि किसप्रकार से तुम देशसे निकाले गये ?

वि० । मैं देशसे निकाली गयी हा ! (रोना और आंसू पोछना, बिकलता नाट्य करता है ।) (स्वगत) हरे ! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ, अपनी बातोंसे खुल गयी कि मैं स्त्री हूं !!

सा० । यह क्यों ? रोना नहीं चाहिये सुनिये ; आपके शब्दोंने हमें एक सन्देहमें डाल दिया ;

वि० । (आंसू पोंछती हुई) सन्देह कैसा ?

सा० । तुम्हारा नाम क्या है ?

वि० । हमारा नाम, हमारा नाम तो वि, विं, वियोगी ;

सा० । कहो, कहो, रुको मत ;

वि० । वियोगिनी तो नामही है, हरे ! काम की जीभ भी

क्या हो तुतरी होती है, क्या कहने को क्या कहती हू नहीं! नहीं! क्या कह दिया;

सा०। नहीं! नहीं!! शुद्ध और स्थायी नाम क्या है?

वि०। वियोग हो स्थायी रहेगा;

सा०। किसका वियोग?

वि०। महाआनन्दका!

सा०। ईश्वर मनुष्य मात्रको सर्व्वदा एक दशामें नहीं रखता? कभी आनन्दका कभी दुःखका दिन दिखाता है?

वि०। सब दशामें वियोग स्थायी रहता है? अर्थात् कभी सुखका वियोग, और कभी दुःखका वियोग अर्थात् सर्व्वदा वियोग हो वियोग है; अतः मैं वियोगिनी हूं हां!!!

सा०। क्या स्त्री हो?

वि०। नहीं! नहीं!! आप स्त्रीका चिन्ह कौनसा पाते वा देखते हैं?

सा०। विशेष चिन्ह तो अगोचर है, परन्तु मुखमण्डल पुकार पुकार कहता है, तुम स्त्री हो और वियोगिनी होना भी केवल स्त्री हो को पड़ता है और यह भी लक्षित होता है कि किसी बड़े घर की लड़की हो?

वि०। निस्सन्देह!

सा०। बात कहने में रुक जाना सुननेवालेके मनको दुःख पहुंचाता है;

वि०। सुनिये! मैं आपसे नहीं छिपा सकती, मेरा नाम विद्या है;

सा०। (आश्चर्यान्वित हो कर) विद्या? हरे! कौन विद्या? वास्तविक समाचार कहो, वास्तविक शोभा, वह सुन्दर रूप कहां गया?

वि०। (चकित होके) महाआनन्दके साथ चला गया ;

सा०। नहीं ! नहीं ! ऐसा मत कहो, महाआनन्द तुम्हारे साथ है ;

वि०। (नखसे शिखतक इकटक देखकर) महाराज ! आप का नाम क्या है ?

सा०। हमारा नाम तुम्हारे समुचित समाचारोंसे छिपा है ;

वि०। मेरा समुचित समाचार क्या, मैं यथार्थमें राजा चन्द्रसेन की लड़की हूं ; (चट लांग उतार कर साड़ी ओढ़ती हुई) मेरा नाम विद्याधरी है ? मैं पिता की मन्दबुद्धिसे वन वन ठोकर खाती हूं ;

सा०। पिताने क्या किया ?

वि०। पिताने कुछ नहीं किया ;

सा०। तब पिताको दोष लगाना कैसा, और सब समाचार कहो ?

वि०। और सब समाचार महाआनन्दके हाथमें हैं ।

सा०। कौन महाआनन्द ?

वि०। शान्तिनगरीका राजपुत्र और हमारा परमप्रभु नाम हमें ज्ञात नहीं है ?

सा०। (कमण्डल और खड़ुआ फेंककर लिपटता और आलिङ्गन करता हुआ) प्यारि ! मैं शान्तिनगरीका राजकुमार मेरी भी यह दशा तुम्हारे प्रेमहीने कर रक्खी है ; मैं विनोद हूं मैं विद्या रसिक हूं, मैं ही महाआनन्द हूं ;

वि०। (सम्भालती और लज्जित होती हुई), हां ! हां !! नाम यही है ?

(विद्या और विनोद की आंखे परस्पर आमोद और प्रेम-

आलिङ्गन तथा करुणाजनित नेत्र अश्रुजलसे सजल होती हैं। तड़िता और कन्दला विद्या को खोजती हुई एक ओर से सुरेश विनोद की खोजमें बावला सा बना दूसरी ओरसे हाँफ्ते हाँफ्ते आते हैं, और पांचोजनोंके चिरकालिक वियोगजनित महा सन्तापका निर्मूल, समस्तका असीम आनन्द होता है।)

सब एक स्वरमे —

रीति कुरीति बढ़ी बहुधा बसुधा महं यासम अन्न अहैना।
फूटहिं सों यह देशनमें दुख शेष भी यासन कोउ रहैना।
अस्त भये रवि ज्ञान पराक्रम, कौशलतावल शिल्प गहैना।
विछे दुःख दुर्गतिको बहुजाल गुपाल उधारन कोउकहैना।
ज्ञानको सूरज अस्त भयो, गयो भारज भ्रातनकी प्रभुताई।
रक्षक नागरिके बिगरे निगरे दिनसें करिहैं न सहाई।
राजाधिराजक शाह, धनी सब मौन भये शुभकाम बिहाई।
कृष्ण अधाहिज जीवनकों, नहिं दीखे कहुं अवलम्बसहाई।

(सब माथे नवाते हैं, जवनिका गिरती है, नाटक समाप्त होता है।)

इति सप्तम अङ्क ।